ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-2* March- 2021
Innovation The Research Concept

सामाजिक सन्दर्भ में कबीर की क्रान्ति चेतना

Revolution of Kabir in Social Context

Paper Submission: 02/03/2021, Date of Acceptance: 18/03/2021, Date of Publication: 19/03/2021

प्रियंका अग्रवाल
शोधार्थिनी,
हिन्दी विभाग,
गिन्नी देवी मोदी गर्ल्स पी.जी. कालिज, मोदीनगर,
गाजियाबाद, उ०प्र०, भारत

सारांश

काल की कठोर आवश्यकताएँ महात्माओं को जन्म देती हैं। कबीर का जन्म भी समय की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुआ था। सामान्यतः कबीर समाज सुधारक नहीं थे। समाज–रचना के लिए उन्होंने कोई सुधारवादी आंदोलन नहीं चलाया। वह सामाजिक वैषम्य से क्षुब्ध थे। दलित और शोषित वर्ग के प्रति उनमें गहरी सहानुभूति थी। समाज–कल्याण उनका लक्ष्य था। अभ्युदय के साथ निःश्रेयस उनकी कामना थी। कविता के लिए कविता उनका ध्येय नहीं था। उनकी गहन अनुभूति ही अभिव्यक्ति का आधार हैं। इसीलिए उनकी वाणी में समाज के विविध चित्र हैं। उनमें गहन सत्य ही मुखर हुआ हैं।

The strict requirements of Kaal give birth to Mahatmas. Kabir was also born to cater to the special needs of the time. In general, Kabir was not a social reformer. He did not run any reformist movement for the creation of society. He was angry with social contrast. He had deep sympathy for the downtrodden and the underprivileged. Social welfare was his goal. His wish was unheard of with Abhyudaya. Poetry was not his goal for poetry. Their deep feeling is the basis of expression. That is why there are various pictures of society in his speech. Only the deeper truths have been expressed in them.

मुख्य शब्द : धार्मिक, ब्राह्मण, सांस्कृतिक, समाज, जातियां, हिन्दू–मुस्लिम।
Religious, Brahmin, Cultural, Society, Castes, Hindu-Muslim.

प्रस्तावना

भारतीय समाज प्राचीन काल से ही विभिन्न धर्मों, जातियों, सम्प्रदायों वर्गो को अपने भीतर समेटे हुए विविधता में एकता की भावना को प्रतिपादित करता है। कबीर की मूल प्रेरणा उनकी समकालीन परिस्थितियाँ हैं। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक सभी दृष्टिकोणो से कबीर का युग परिवर्तन और संक्रमण का युग था। राजनीतिक और धार्मिक अवस्था के वातावरण में एक सुदृढ़ समाज की आशा नहीं की जा सकती। कबीर ने समकालीन समाज में हिन्दू व मुस्लिम दो वर्गों के अतिरिक्त इनके अन्तर्गत भी अनेक जातियाँ और उपजातियाँ थीं, जिनके पारस्परिक पार्थक्य, मतभेद और संघर्ष ने समाज को जर्जर बना दिया था।

हिन्दुओं में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के अतिरिक्त भी अनेक उपवर्ण थे। ब्राह्मण सर्वोच्च जाति थी, और शूद्रों को तिरस्कृत, पददलित और अछूता समझा जाता था। ब्राह्मणों के अत्याचारों, और निषेधों ने शूद्र जाति की अवस्था विशेष रूप से विपन्न बना दी थी। समाज में तिरस्कृत लोग अपनी नयी जाति का निर्माण करके जातियों की संख्या में वृद्धि कर रहे थे – इस समय की जाति–बहुलता पर प्रकाश डालते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है– ''देश में वर्णाश्रम व्यवस्था को पहली बार एक अनुभूत परिस्थिति का सामना करना पड़ा था। ..... आचार भ्रष्ट व्यक्ति समाज से अलग कर दिये जाते थे और वे एक नई जाति को जन्म देते थे।'' (1)

कुछ आश्रम–भ्रष्ट जातियाँ 'जुगी' जाति के नाम से भी अभिहित की गई जो न हिन्दू थीं और न मुसलमान। हिन्दुओं की जातिगत कठोरता को परिणाम सामाजिक विश्रृंखलता के रूप में दृष्टिगत हुआ। छूतछात, जॉति–पॉति और वर्णभेद के अतिरिक्त उस समय विलासिता भी समाज का एक अंग थी। यवन शासकों की विलासप्रियता इतिहास प्रसिद्ध है। कंचन और कामिनी में समाज मदमत्त था। इसी विश्रृंखल समाज को सुधारने की प्रेरणा कबीर काव्य की पृष्ठभूमि में निहित है। कबीर उस समाज में उत्पन्न हुए थे, जहाँ जाति का ही सबसे बड़ा मूल्य था। साधु सन्यासियों का भी महत्व जाति से ऑका जाता था।

सौभाग्य से कबीर जाति के जुलाहा थे, जिस जाति की गिनती अंत्यजो में होती है। सौभाग्य से वे काशी में उत्पन्न हुए थे, जो ब्राह्मणत्व का गढ़ था। ब्राह्मण – व्यवस्था के गढ़ में ही बैठकर वे ब्राह्मण व्यवस्था पर गोलाबारी करते रहें। उन्होंने पहला प्रहार चातुर्वर्ण्य पर ही किया। ब्राह्मणों ने तपस्यादि को ब्राह्मण और क्षत्रियों तक ही सीमित कर दिया था। कबीर ने उसके खिलाफ नया मूल्य स्थापित किया। उन्होंने कहा, 'हरिजन सई न जाति' भक्त के समय कोई दूसरी जाति नही हैं। यानी जो भक्त है वह यदि अस्पृश्य भी हैं, तब भी ब्राह्मणों से श्रेष्ठ है। इस प्रकार वर्णाश्रम की अन्यायपूर्ण व्यवस्था पर उन्होंने भक्ति के हथियार से प्रहार किया। कबीर नया मूल्य स्थापित करते हुए कहते हैं

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहने दो म्यान

कबीर के समय एक ओर साधु सन्यासियों की मंडली धर्म के नाम पर पाखण्ड और मिथ्याचार को बढ़ावा देकर सामान्य जन को दिग्भ्रमित कर रही थी; तो दूसरी ओर सारा समाज वर्ण – व्यवस्था और जातिगत श्रेष्ठता हीनता की जकड़बन्दी का शिकार हो रहा था। वर्ण–व्यवस्था पर प्रतिष्ठित सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मण सर्वोपरि था। मध्यकाल तक आते–आते वर्ण–व्यवस्था जाति–व्यवस्था में परिणत हो गई। वर्ण केवल चार थे, किन्तु जातियों की संख्या बढ़ती चली गईं।

तिरासी संख्या की रमैनी में ऊँची कही जाने वाली एक दूसरी जाति क्षत्रिय को उन्होंने नये ही ढंग से परिभाषित किया है। क्षत्रिय वही हैं, जो क्षत्रिय धर्म का पालन करता है। कबीर सामाजिक वैषम्य से क्षुब्ध थे। दलित और वर्ग के प्रति उनमें गहरी सहानुभूति थी। समाज कल्याण उनका लक्ष्य था। कविता के लिए कविता उनका ध्येय नहीं था। उनका गहन अनुभूति ही अभिव्यक्ति का आधार हैं। इसलिए उनकी वाणी में समाज के विविध चित्र हैं। उनमें गहन सत्य ही मुखर हुआ है।

वर्तमान काल की भाँति ही सदगुरू कबीर के काल में भी विषमता व्याप्त थी। जाति राजनीति और धर्म की भंयकरता समाज को पंगु बनाए हुए थी। धनी – गरीब के बीच आकाश पाताल की दूरी बनी थी। धर्म सबके लिए समान रूप से उपलब्ध नहीं था। राजनीति एवं धर्म विशेष जाति के हाथों में थे। तत्कालीन समाज प्रचण्ड विषमता की ज्वाला में दग्ध हो रहा था, जिसको देखकर सदगुरू कबीर आन्दोलित हो उठे। उन्होंने अपनी प्रचण्ड एवं प्रखर ज्ञान किरणों से सारी विषमताओं को धर दबोचा।

कबीर को सामाजिक और नैतिक सुधारक के नाते आज के क्रान्तिकारी भी महत्व देते हैं। जाति–भेद के नाम पर मनुष्य–मनुष्य में विषमता का और सामाजिक असमानता की मूर्खता का जिस प्रकार से बुद्ध ने निषेध किया था, कबीर ने उसी क्रान्ति मूलक दृष्टि से उसका विरोध किया है, उन्होंने हिन्दु और मुस्लिम दोनों की अंधश्रद्धा को चुनौती दी, उनके ढंग और बाह्याडम्बरों को उन्होंने व्यर्थ सिद्ध किया। सारे बदन पर भस्म का लेप करना, दिन में तीन बार धर्म के नाम पर नहाना, उपवास रखना, तीर्थ यात्रा पर जाना, मालाएँ फेरना, जोर–जोर से ईश्वर नामोच्चारण का प्रदर्शन करना, अपने शरीर को दंडित करने में आनन्द लेना, ये सब कबीर के तीव्र व्यंग्य और घोर उपवास के विषय बने। वेदपाठ, तीर्थस्थान, व्रतोद्यापन, छुआछूत, अवतारोपासना कर्मकाण्ड इत्यादि सबके विरूद्ध कबीरदास ने लिखा है –

''क्या उजू जप भजन कीये, क्या मसीती सिर नाचे
रोजा करे निमाज गुजारे, क्या हज काषै जाये।''

''कबीरदास जी हिन्दू धर्म या किसी अन्य धर्म के खिलाफ नही थे, और न ही किसी धर्म का विरोध किया, वे तो हिन्दू धर्म में फैले आडम्बर के विरोधी थे।'' कबीर ने हिन्दू विधि–विधानों की निरर्थकता पर प्रहार करने के साथ ही नाथ योगियों, जैनियों तथा मुस्लिम समाज में व्याप्त कुरीतियों, बाह्याडम्बर तथा अंधविश्वास का भी विरोध किया है। जिस प्रकार हिन्दू विधानों के निर्माता पंडित पुरोहित थे उसी प्रकार मुस्लिम समाज, मुल्ला तथा काजिब के फतबा का अंधानुयायी था। दोनों धर्मानुयायियों में भेदभाव की खाई गहरी होती जा रही थी। मुस्लिम समाज में जातिवाद बढ़ने लगा था। उनमें शिया–सुन्नी का विवाद था। शेख, सैयद, जुलाहा, पठान आदि के नाम पर ऊँच–नीच की विचारधारा भी पनपने लगी थी। बहुविवाह से भी उनमें अनेक प्रकार की सामाजिक समस्याएँ पैदा होने लगी थीं। कबीर कहते हैं कि व्यक्ति तभी सामाजिक हो सकता है, जबकि वह संकीर्ण एवं संकुचित विचारधारा के मदों, अन्धविश्वासों रूढ़िवादिता एवं अनैतिकता से असत्य एवं हिंसात्मक आचरण से अवैधानिक व्यवहार से छुटकारा पा सके तथा उसमें सत्याचरण, अहिंसा, श्रम, समाज सेवा, वैज्ञानिक चिन्तन, आत्मनिर्भरता, व्यावसायिक क्षमता, तथा खोजकर्ता के प्रति रूचि व रूझान उत्पन्न कर सके और इन्हें अपने जीवन का अंग बनाने का अवसर दे सके।

कबीर उस समाज में पालित हुए थे जो न तो हिंदुओं द्वारा समादृत था, न मुसलमानों द्वारा पूर्णरूप से स्वीकृत। वह कुल–परम्परा से ज्ञानार्जन के अयोग्य समझा जाता था। बाहर के प्रलोभन से हो या भीतर के आघात से, वह मुसलमानी राजत्वकाल में मुसलमान धर्म ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त कर सका था, पर न तो राज–धर्म के ग्रहण कर लेने के कारण उसमें राजकीय गरिमा का संचार ही हुआ था और न प्राचीन हीनता से उद्धार ही। नाममात्र की मुसलमान इस जुलाहा जाति के रक्त में प्राचीन योगमार्गीय विश्वास पूरी मात्रा में वर्तमान था, पर शास्त्र–ज्ञान प्राप्त करने का दरवाजा उसके लिए रूद्ध हो गया था। ये गरीबी में जनमते थे, गरीबी में ही पलते थे और उसी में ही मर जाया करते थे। ऐसे कुल में पैदा हुए व्यक्ति के लिए कल्पित ऊँच–नीच भावना और जाति–व्यवस्था का फौलादी ढाँचा तर्क और बहस की वस्तु नहीं होती, जीवन–मरण का प्रश्न होता है।

आधुनिक भारतीय समाज में भारतीय दार्शनिक मूल्यों का स्थान भौतिक मूल्यों ने ले लिया है। पश्चिम में आयातित विचार दर्शन पर भारतीय समाज की रचना करने का प्रयास किया जा रहा हैं, इन विचारों पर आधारित समाज रचना में अनेक पुरानी समस्याओं का समाधान नये परिवेश में करते हुए नयी समस्याओं को

जन्म दिया है। ये समस्यायें पिछली समस्याओं से भी अधिक विकराल रूप लेकर समाज के समक्ष मुँह बॉये खड़ी हैं ''भौतिक जीवन स्तर वास्तविक समस्या का एक पक्ष है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि उपकरणों एवं साधनों के आधुनिकीकरण के द्वारा अत्यधिक मौलिक उन्नति करने का यह प्रश्न आपत्ति रहित नहीं है। भौतिक विचारधारा मूल्यों के बदले वस्तु पर जोर देती है, आध्यात्मिकता की अपेक्षा लौकिकता को अधिक महत्वपूर्ण समझती है, और सुख की कल्पना इन बातों में नहीं करती कि मनुष्य क्या हैं? अथवा अपने को क्या बताता है, बल्कि इस बात में करती हैं, कि उसने कैसे और कितने भौतिक साधनों पर अधिकार कर लिया।''

हमारे देश में एक ऐसी विचारधारा भी प्रतिष्ठित है – जिसका प्रतिनिधित्व महात्मा गाँधी करते हैं। वह यह विचारधारा है कि बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण के परिणाम अच्छे नहीं होते और इसका प्रभाव नैतिक और सामाजिक जीवन पर बहुत दूर तक पड़ता हैं। यह विचारधारा उस आधारभूत दर्शन को चुनौती देती है जिस पर आधुनिक पश्चिमी विचारधारा खड़ी है। महात्मा गाँधी के अनुसार अत्यधिक भौतिक प्रवृति के परिणाम भयावह होते हैं। अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए हम भौतिक उन्नति के जितने पीछे खड़े हैं, उतने ही हम चारित्र्य के शिखर के नीचे गिरे हैं। वह आर्थिक सत्य बिल्कुल ठीक है, कि हम ईश्वर व लक्ष्मी की आराधना एक साथ नहीं कर सकते। हमें ईश्वर व उसकी प्रवृति की साधना करनी चाहिए।

कबीर का दर्शन व्यवहार, कुशल परिवर्तित वातावरण के अनुकूल चलने योग्य, स्थानीय मान्याताओं पर विश्वास रखने योग्य, तथा विस्तृत दृष्टिकोण अपनाकर वैज्ञानिक चिन्तक एवं अभ्यासकर्ता बन सकने पर जोर देता है। मानवता के सार्वभौम और शाश्वत स्वरूप की कबीर खोज करते हैं। जीवो के प्रति कबीर की पीड़ा और प्रेम उन्हें समाज सुधारक बनाता है। सत्य के प्रति आग्रह और जीवन के शाश्वत मूल्यों की अधिकता के कारण कबीर की वाणी कालजयी है –

''कस्तूरी कुंडलि बसै मृग ढूढै वन माहि।
ऐसे घट घट राम है, दुनिया देखै नाहि।।

आर्थिक दृष्टि से कबीर के युग का समाज अर्थ केन्द्रित न होते हुए भी आर्थिक समस्याओं से ग्रस्त था। विदेशी शासकों की लूट ने भारत की अर्थव्यवस्था को छिन्न–भिन्न कर दिया था। साथ ही अकाल, दुर्भिक्ष और शासकीय करों के बोझ ने जनता को और अधिक दबा दिया ''कलि बारहि बार दुकाल परै, बिन अन्न दुखी सब लोग मरै'' कहकर तुलसी ने भी

इस ओर संकेत किया है। हिन्दु जनता पर कुछ विशिष्ट कर भी मुसलमान शासकों ने लगाये। इसके अतिरिक्त समाज में अर्थ संग्रह की प्रवृति के कारण वर्गविषमता थी। निम्न वर्ग की जीविकोपार्जन के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता था, जिसका प्रमाण स्वयं कबीर का जीवन है, ''कलि का स्वामी लोमिया'' कहकर कबीर ने समाज के उच्च वर्ग की लोभी मनोवृति की ओर संकेत किया है। आर्थिक परिस्थितियों ने कबीर को अनासक्त सन्त बनाया और उनकी साधुवृति को जन्म दिया।

शोध का उद्देश्य

1. धर्म व वर्ण–व्यवस्था तथा जाति–पाति का भेदभाव दूर कर सबको एक समान मानना व समझना कबीर दास का उद्देश्य था।
2. समाज के व्याप्त कुरीतियों, बाह्मयाडम्बर तथा अंधविश्वास को दूर करके एक नये युग में क्रान्ति चेतना का उदय करना।

निष्कर्ष

कबीर की समसामयिक परिस्थितियों का उनके काव्य के स्वरूपनिर्माण में महत्वपूर्ण योगदान हैं। युग के अन्तः और बहिसंघर्ष ने ही उन्हें समाज सुधार, रूढ़ियो, पाखण्डों और अंधविश्वासों के खण्डन, सर्वधर्म समत्व के मत प्रतिपादन और निर्भीक अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित किया था। राजनीतिक परिस्थितियों ने उन्हें बाह्य संसार से तटस्थ आत्मसाधक बनाया तथा धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों ने उनके दार्शनिक योगी तथा समाज सुधारक नेता रूपों का सृजन किया इन्हीं रूपों की अभिव्यक्ति उनके काव्य में दृष्टिगत होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *कबीर ग्रन्थावली – डॉ0 श्यामसुन्दरदास, पृ0 28*
2. *कबीर – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 175*
3. *वही*
4. *कबीर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ0 आर्या प्रसाद त्रिपाठी, पृ0 275*
5. *कबीर ग्रन्थावली – डॉ0 श्यामसुन्दरदास, पृ0 301*
6. *कबीर ग्रन्थावली – डॉ0 श्यामसुन्दरदास, पृ0 28 (करनी बिना कथनी की अंग)*
7. *वही, पृ0 129*